

## CHAPTER सात

### पौराणिक साहित्य

इस अध्याय में श्री सूत गोस्वामी अथर्ववेद की शाखाओं के विस्तार, पुराणों के संकलनकर्ताओं का नामोल्लेख तथा पुराणों के लक्षणों का वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् वे अठारह प्रमुख पुराणों की सूची देते हैं और यह कह कर अपना वर्णन समाप्त करते हैं कि जो कोई शिष्य-परम्परा प्राप्त व्यक्ति से इन विषयों को सुनता है उसे आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

सूत उवाच

अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ।  
संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; अथर्व-वित्—अथर्ववेद का ज्ञाता; सुमन्तुः—सुमन्तु; च—तथा; शिष्यम्—अपने शिष्य को; अध्यापयत्—शिक्षा दी; स्वकाम्—अपनी; संहिताम्—संहिता; सः—उसने, सुमन्तु के शिष्यने; अपि—भी; पथ्याय—पथ्य को; वेददर्शाय—वेददर्श का; च—तथा; उक्तवान्—कहा।

सूत गोस्वामी ने कहा : अथर्ववेद के विशेषज्ञ, सुमन्तु ऋषि, ने अपनी संहिता अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ाई जिसने इसे पथ्य और वेददर्श से कहा।

तात्पर्य : विष्णु पुराण में पुष्टि हुई है—

अथर्ववेदं स मुनिः सुमन्तुरमितद्युतिः ।

शिष्यमध्यापयामास कबन्धं सोऽपि च द्विधा ।

कृत्वा तु वेददर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान् ॥

“अमित द्युति वाले मुनि सुमन्तु ने अपने शिष्य कबन्ध को अथर्ववेद पढ़ाया। कबन्ध ने इसके दो भाग कर दिये और उन्हें वेददर्श तथा पथ्य को दे दिया।”

शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ।

वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ।

कुमुदः शुनको ब्रह्मन्जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

शौक्लायनिः ब्रह्मबलिः—शौक्लायनि तथा ब्रह्मबलि; मोदोषः पिप्पलायनिः—मोदोष तथा पिप्पलायनि; वेददर्शस्य—वेददर्श के; शिष्याः—शिष्य; ते—वे; पथ्य-शिष्यान्—पथ्य के शिष्य; अथो—और भी; शृणु—सुनो; कुमुदः शुनकः—कुमुद तथा शुनक; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शौनक; जाजलिः—जाजलि; च—तथा; अपि—भी; अथर्व-वित्—अथर्ववेद के ज्ञाता।

शौक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष तथा पिप्पलायनि वेददर्श के शिष्य थे। मुझसे पथ्य के भी शिष्यों के नाम सुनो। हे ब्राह्मण, वे हैं—कुमुद, शुनक तथा जाजलि। वे सभी अथर्ववेद को अच्छी तरह जानते थे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार वेददर्श ने अथर्ववेद के अपने संस्करण को चार

भागों में विभाजित करके उन्हें अपने चार शिष्यों को पढ़ाया। पथ्य ने अपने संस्करण के तीन भाग किये और यहाँ पर उल्लिखित तीन शिष्यों को उनकी शिक्षा दी।

बभ्रुः शिष्योऽथान्गिरसः सैन्धवायन एव च ।  
अधीयेतां संहिते द्वे सावर्णाद्यास्तथापरे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

बभ्रुः—बभ्रु; शिष्यः—शिष्य; अथ—तब; अङ्गिरसः—शुनक ( जो अंगिरा भी कहलाते हैं ) का; सैन्धवायनः—सैधवायन; एव—निस्सन्देह; च—भी; अधीयेताम्—उन्होंने सीखा; संहिते—संहिताएँ; द्वे—दो; सावर्ण—सावर्ण; आद्याः—इत्यादि; तथा—उसी तरह; अपरे—अन्य शिष्यों ने।

बभ्रु तथा सैधवायन नामक शुनक के शिष्यों ने अपने गुरु द्वारा संकलित अथर्ववेद के दो भागों का अध्ययन किया। सैन्धवायन के शिष्य सावर्ण तथा अन्य ऋषियों के शिष्यों ने भी अथर्ववेद के इस संस्करण का अध्ययन किया।

नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः ।  
एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

नक्षत्रकल्पः—नक्षत्रकल्प; शान्तिः—शान्तिकल्प; च—भी; कश्यप-आङ्गिरस-आदयः—कश्यप, आंगिरस तथा अन्य; एते—ये; आथर्वण-आचार्याः—अथर्ववेद के गुरु; शृणु—सुनो; पौराणिकान्—पुराणों के विद्वान; मुने—शौनक।

नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प, कश्यप, आंगिरस तथा अन्य लोग भी अथर्ववेद के आचार्यों में से थे। हे मुनि, अब पौराणिक साहित्य के विद्वानों के नाम सुनो।

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिकृतव्रनः ।  
वैशम्पायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

त्रय्यारुणिः कश्यपः च—त्रय्यारुणि तथा कश्यप; सावर्णिः अकृत-व्रणः—सावर्णि तथा अकृतव्रण; वैशम्पायन-हारीतौ—वैशम्पायन तथा हारीत; षट्—छ; वै—निस्सन्देह; पौराणिकाः—पुराणों के आचार्य; इमे—ये।

त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन तथा हारीत—ये छः पुराणों के आचार्य हैं।

अधीयन्त व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ।  
एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अधीयन्त—उन्होंने सीखा; व्यास-शिष्यात्—व्यासदेव के शिष्य ( रोमहर्षण ) से; संहिताम्—पुराणों के संग्रह; मत्-पितुः—मेरे पिता के; मुखात्—मुख से; एक-एकाम्—हर एक ने एक अंश सीखा; अहम्—मैंने; एतेषाम्—इनमें से; शिष्यः—शिष्य; सर्वाः—सारे संग्रह; समध्यगाम्—पूरी तरह सीखा।

इनमें से प्रत्येक ने मेरे पिता रोमहर्षण से जोकि श्रील व्यासदेव के शिष्य थे, पुराणों की छहों संहिताओं को पढ़ा। मैं इन छहों आचार्यों का शिष्य बन गया और मैंने इस पौराणिक ज्ञान का भलीभाँति प्रस्तुतिकरण सीखा।

कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रनः ।  
अधीमहि व्यासशिष्याच्चत्वारो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

कश्यपः—कश्यप; अहम्—मैं; च—तथा; सावर्णिः—तथा सावर्णि; राम-शिष्यः—राम के शिष्य; अकृतव्रणः—अकृतव्रण; अधीमहि—हमने आत्मसात किया; व्यास-शिष्यात्—व्यास के शिष्य ( रोमहर्षण ) से; चत्वारः—चार; मूल-संहिताः—मूल संहिताएँ।

वेदव्यास के शिष्य रोमहर्षण ने पुराणों को चार मूल संहिताओं में विभाजित कर दिया। मुनि कश्यप तथा मैंने सावर्णि तथा राम के शिष्य अकृतव्रण के साथ-साथ इन चारों संहिताओं को सीखा।

पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् ।  
शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

पुराण-लक्षणम्—पुराण के लक्षण; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शौनक; ब्रह्म-ऋषिभिः—परम विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा; निरूपितम्—सुनिश्चित; शृणुष्व—सुनो; बुद्धिम्—बुद्धि पर; आश्रित्य—आश्रित होकर; वेद-शास्त्र—वैदिक शास्त्रों के; अनुसारतः—अनुसार।

हे शौनक, तुम ध्यान से पुराण के लक्षण सुनो जिनकी परिभाषा अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् ब्राह्मणों ने वैदिक साहित्य के अनुसार दी है।

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च ।  
वंशो वंशानुचरीतं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥  
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।  
केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सर्गः—सृष्टि; अस्य—इस ब्रह्माण्ड की; अथ—तब; विसर्गः—गौण सृष्टि; च—तथा; वृत्ति—पालन; रक्षा—सुरक्षा; अन्तराणि—मनुओं के शासन; च—तथा; वंशः—महान् राजाओं के वंश; वंश-अनुचरितम्—उनके कार्यों का वर्णन; संस्था—प्रलय; हेतुः—( भौतिक कार्यों में जीवों के लगने का ) कारण; अपाश्रयः—परम शरण; दशभिः—दस; लक्षणैः—लक्षणों से; युक्तम्—युक्त; पुराणम्—पुराण को; तत्—इस विषय का; विदुः—विद्वान्; विदुः—जानते हैं; केचित्—कुछ विद्वान्; पञ्च-विधम्—पाँच प्रकार के; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; महत्—महान्; अल्प—तथा छोटे के; व्यवस्थया—अन्तर के अनुसार।

हे ब्राह्मण, इस विषय के विद्वान्, पुराण के दस लक्षण बतलाते हैं—इस ब्रह्माण्ड की

सृष्टि ( सर्ग ), तत्पश्चात् लोकों तथा जीवों की सृष्टि ( विसर्ग ), सारे जीवों का पालन-पोषण ( वृत्ति ), उनका भरण ( रक्षा ), विभिन्न मनुओं के शासन ( अन्तराणि ), महान् राजाओं के वंश ( वंश ), ऐसे राजाओं के कार्यकलाप ( वंशानुचरित ), संहार ( संस्था ), कारण ( हेतु ) तथा परम आश्रय ( अपाश्रय )। अन्य विद्वानों का कहना है कि महापुराणों में इन्हीं दस का वर्णन रहता है, जबकि छोटे पुराणों में केवल पाँच का।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध ( २.१०.१ ) में भी महापुराण के दस विषयों का वर्णन हुआ है—

श्रीशुक उवाच

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमृतयः ।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥

“श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : श्रीमद्भागवत में निम्नलिखित के विषय में दस प्रकार के कथन हैं : ब्रह्माण्ड की सृष्टि, उपसर्ग, लोक, भगवान् द्वारा सुरक्षा, सृजनात्मक प्रेरणा, मनुओं का परिवर्तन, ईश-विज्ञान, भगवद्भाम को वापसी, मोक्ष तथा परम आश्रय।”

श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार श्रीमद्भागवत जैसे पुराणों में इन दस विषयों का वर्णन रहता है, जबकि छोटे पुराणों में केवल पाँच विषयों का। वैदिक वाङ्मय में कहा गया है—

सर्गश्च परिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चेति पुराणं पंचलक्षणम् ॥

“सृष्टि, गौण सृष्टि, राजवंश, मनुओं के राज्य तथा विविध वंशों के कार्यकलाप—ये पुराण के पाँच लक्षण हैं।” जिन पुराणों में पाँच प्रकार का ज्ञान रहता है, उन्हें गौण पौराणिक साहित्य कहते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी ने बतलाया है कि श्रीमद्भागवत के दस मुख्य विषय बारह स्कन्धों में से प्रत्येक स्कन्ध में पाये जाते हैं। किसी एक स्कन्ध के लिए किसी एक विषय को निर्धारित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। न ही श्रीमद्भागवत की कृत्रिम विवेचना करके यह दिखाने का प्रयास करना चाहिए कि इन विषयों का एक के बाद एक वर्णन हुआ है। सीधी-सी बात यह है कि ज्ञान के सारे पक्ष जो मनुष्यों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और जिनका सार ऊपर लिखी दस श्रेणियों में दिया गया है, श्रीमद्भागवत में विभिन्न बल और विश्लेषण सहित सर्वत्र पाये जाते हैं।

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ।

भूतसूक्ष्मेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अव्याकृत—प्रकृति की अव्यक्त अवस्था; गुण-क्षोभात्—गुणों के क्षोभ से; महतः—महत् तत्त्व से; त्रि-वृतः—तीन प्रकार का; अहमः—मिथ्या अहंकार से; भूत-सूक्ष्म—अनुभूति के सूक्ष्म रूपों की; इन्द्रिय—इन्द्रियों की; अर्थानाम्—तथा इन्द्रिय-विषयों की; सम्भवः—उत्पत्ति; सर्गः—सृष्टि; उच्यते—कहलाती है।

अव्यक्त प्रकृति के भीतर मूल गुणों के क्षोभ से महत् तत्त्व उत्पन्न होता है। महत् तत्त्व से मिथ्या अहंकार उत्पन्न होता है, जो तीन पक्षों में बँट जाता है। यह तीन प्रकार का मिथ्या अहंकार अनुभूति के सूक्ष्म रूपों, इन्द्रियों तथा स्थूल इन्द्रिय-विषयों के रूप में, प्रकट होता है। इन सबों की उत्पत्ति सर्ग कहलाती है।

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।

विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पुरुष—सृष्टि की लीला करते भगवान् का; अनुगृहीतानाम्—कृपाप्राप्त लोगों का; एतेषाम्—इन तत्त्वों का; वासना-मयः—जीवों की विगत इच्छाओं के अवशेषों से युक्त; विसर्गः—गौण सृष्टि; अयम्—यह; समाहारः—व्यक्त संयोग; बीजात्—बीज से; बीजम्—दूसरा बीज; चर—गति करते प्राणी; अचरम्—तथा जड़ प्राणी।

गौण सृष्टि ( विसर्ग ), जो ईश्वर की कृपा से विद्यमान है, जीवों की इच्छाओं का व्यक्त संयोग है। जिस प्रकार एक बीज से अतिरिक्त बीज उत्पन्न होते हैं, उसी तरह कर्ता में भौतिक इच्छाओं को बढ़ाने वाले कार्य चर तथा अचर जीवों को जन्म देते हैं।

तात्पर्य : जिस तरह बीज उग कर वृक्ष बन जाता है, जिससे हजारों नये बीज बनते हैं, उसी तरह भौतिक इच्छा सकाम कर्म में विकसित होती है, जिससे बद्धजीव के हृदय में हजारों नवीन इच्छाओं का स्फुरण होता है। पुरुषानुगृहीतानाम् शब्द सूचित करता है कि भगवान् की कृपा से मनुष्य को इस जगत में इच्छा करने और कार्य करने की अनुमति मिलती है।

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ।

कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

वृत्तिः—भरण, निर्वाह; भूतानि—जीव; भूतानाम्—जीवों का; चराणाम्—चेतनों का; अचराणि—जड़ों का; च—तथा; कृता—सम्पन्न किया हुआ; स्वेन—अपने बद्ध स्वभाव से; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; तत्र—उसमें; कामात्—कामवश; चोदनया—वैदिक आदेशों के अनुसार; अपि—निस्सन्देह; वा—अथवा।

वृत्ति का अर्थ है भरण या निर्वाह की विधि जिससे चेतन प्राणी जड़ प्राणियों पर निर्वाह करते हैं। मनुष्य के लिए वृत्ति का विशेष अर्थ होता है अपनी जीविका के लिए इस तरह से कार्य करना जो उसके निजी स्वभाव के अनुकूल हो। ऐसा कार्य या तो स्वार्थ की इच्छानुसार या फिर ईश्वर के नियमानुसार पूरा किया जा सकता है।

रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे युगे ।

तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

रक्षा—रक्षा; अच्युत-अवतार—भगवान् अच्युत के अवतारों का; ईहा—कार्यकलाप; विश्वस्य—इस ब्रह्माण्ड का; अनु युगे युगे—प्रत्येक युग में; तिर्यक्—पशुओं; मर्त्य—मनुष्यों; ऋषि—मुनियों; देवेषु—तथा देवताओं के बीच; हन्यन्ते—मारे जाते हैं; यैः—जिन अवतारों द्वारा; त्रयी-द्विषः—वैदिक संस्कृति के शत्रु, दैत्यगण।

अच्युत भगवान् प्रत्येक युग में पशुओं, मनुष्यों, ऋषियों तथा देवताओं के बीच प्रकट होते हैं। वे इन अवतारों में अपने कार्यकलापों से ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं और वैदिक संस्कृति के शत्रुओं का वध करते हैं।

तात्पर्य : रक्षा शब्द द्वारा सूचित भगवान् के रक्षा-कार्य महापुराण के दस मूल विषयों में से एक है।

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः ।

षयोऽंशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

मनु-अन्तरम्—प्रत्येक मनु के शासन में; मनुः—मनु; देवाः—देवतागण; मनु-पुत्राः—मनु के पुत्र; सुर-ईश्वराः—विभिन्न इन्द्र; ऋषयः—ऋषिगण; अंश-अवताराः—भगवान् के अंशों के अवतार; च—तथा; हरेः—हरि के; षट्-विधम्—छः प्रकार का; उच्यते—कहा जाता है।

मनु के प्रत्येक शासनकाल ( मन्वन्तर ) में भगवान् हरि के रूप में छह प्रकार के पुरुष प्रकट होते हैं—शासक मनु, मुख्य देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, महर्षि तथा भगवान् के अंशावतार।

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ।

वंशानुचरितं तेषाम्वृत्तं वंशधरास्व ये ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

राज्ञाम्—राजाओं के; ब्रह्म-प्रसूतानाम्—ब्रह्मा से उत्पन्न; वंशः—वंश; त्रै-कालिकः—काल की तीन अवस्थाओं तक विस्तीर्ण ( भूत, वर्तमान तथा भविष्य ); अन्वयः—श्रेणी; वंश-अनुचरितम्—वंशों के इतिहास; तेषाम्—उन वंशों के; वृत्तम्—कार्यकलाप; वंश धराः—वंश के प्रमुख व्यक्ति; च—तथा; ये—जो।

ब्रह्मा से लेकर भूत, वर्तमान तथा भविष्य तक लगातार फैली हुई राजाओं की सरणियाँ ( पंक्तियाँ ) वंश हैं। ऐसे वंशों के, विशेष रूप से सर्वाधिक प्रमुख व्यक्तियों के, विवरण वंश इतिहास के प्रमुख विषय होते हैं।

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः ।

संस्थेति कविभिः प्रोक्तश्चतुर्धास्य स्वभावतः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

नैमित्तिकः—आकस्मिक; प्राकृतिकः—तात्त्विक; नित्यः—संतत; आत्यन्तिकः—अन्तिम; लयः—प्रलय; संस्था—विलय; इति—इस प्रकार; कविभिः—विद्वान् पंडितों द्वारा; प्रोक्तः—वर्णित; चतुर्धा—चार प्रकार से; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; स्वभावतः—भगवान् की निहित शक्ति से।

ब्रह्म प्रलय के चार प्रकार हैं—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक। ये सारे के

सारे भगवान् की अन्तर्निहित शक्ति द्वारा प्रभावित होते हैं। विद्वान् पंडितों ने इस विषय का नाम विलय रखा है।

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ।

यं चानुशायिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हेतुः—कारण; जीवः—जीव; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; सर्ग-आदेः—सृजन, पालन तथा संहार का; अविद्या—अज्ञानतावश; कर्म-कारकः—भौतिक कार्य करने वाला; यम्—जिसको; च—तथा; अनुशायिनम्—सन्नहित व्यक्ति; प्राहुः—कहते हैं; अव्याकृतम्—अव्यक्त; उत—निस्सन्देह; अपरे—अन्य।

जीव अज्ञानवश भौतिक कर्म करता है और इस तरह वह, एक अर्थ में, ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार का हेतु बन जाता है। कुछ विद्वान् जीव को भौतिक सृष्टि में निहित पुरुष मानते हैं जबकि अन्य उसे अव्यक्त आत्मा कहते हैं।

तात्पर्य : भगवान् स्वयं ही ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं। किन्तु ऐसे कार्य बद्धजीवों की इच्छा की पूर्ति के लिए ही सम्पन्न किये जाते हैं, जिन्हें यहाँ हेतु कहा गया है। भगवान् इस जगत को बद्धजीव द्वारा प्रकृति का शोषण करने तथा अन्ततः, अपना आत्म-साक्षात्कार सुगम बनाने के प्रयास में सहायक बनने के लिए उत्पन्न करते हैं।

चूँकि बद्धजीव अपने स्वाभाविक स्वरूप को देख नहीं सकते इसलिए वे यहाँ पर अव्याकृतम् या अव्यक्त बतलाये गये हैं। दूसरे शब्दों में, जीव जब तक पूर्णतया कृष्णभावनाभावित न हो, वह अपने असली स्वरूप को नहीं देख सकता।

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।

मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

व्यतिरेक—पृथक् अस्तित्व; अन्वयः—तथा; यस्य—जिसका; जाग्रत्—जगी हुई चेतना; स्वप्न—स्वप्न; सुषुप्तिषु—तथा गहरी नींद के अन्तर्गत; माया-मयेषु—माया की वस्तुओं के अन्तर्गत; तत्—वह; ब्रह्म—परब्रह्म; जीव-वृत्तिषु—जीवों के कार्यों के अन्तर्गत; अपाश्रयः—अद्वितीय आश्रय।

परब्रह्म, जागरूकता की सभी अवस्थाओं—जागृत, सुप्त तथा सुषुप्ति—में, माया द्वारा प्रकट किये जाने वाली सारी घटनाओं में तथा सारे जीवों के कार्यों में उपस्थित रहते हैं। वे इन सबों से पृथक् होकर भी उपस्थित रहते हैं। इस तरह अपने ही अध्यात्म में स्थित, वे परम तथा अद्वितीय आश्रय हैं।

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ।

बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पद-अर्थेषु—भौतिक वस्तुओं में; यथा—जिस प्रकार; द्रव्यम्—मूल वस्तु; सत्-मात्रम्—वस्तुओं का अस्तित्व मात्र; रूप-नामसु—रूपों तथा नामों के बीच; बीज-आदि—बीज इत्यादि ( गर्भधारण से लेकर ); पञ्चता-अन्तासु—मृत्यु तक; हि—निस्सन्देह; अवस्थासु—शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में; युत-अयुतम्—अकेले तथा एकसाथ मिल कर।

यद्यपि भौतिक वस्तु विविध रूप तथा नाम धारण कर सकती है, किन्तु इसका मूलभूत अवयव सदैव इसके अस्तित्व का आधार बना रहता है। इसी तरह परब्रह्म अकेले तथा एकसाथ मिल कर, सदैव भौतिक शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में, गर्भधारण से लेकर मृत्यु तक, उपस्थित रहता है।

तात्पर्य : गीली मिट्टी को विविध रूपों में ढाला जा सकता है और उन्हें जलपात्र, फूलदान या संग्रहपात्र का नाम दिया जा सकता है। किन्तु विविध रूपों तथा नामों के बावजूद मूलभूत अवयव मिट्टी निरन्तर वर्तमान रहती है। इसी तरह परमेश्वर शरीर के अस्तित्व की सभी अवस्थाओं में उपस्थित रहता है। भगवान् और प्रकृति अभिन्न हैं क्योंकि भगवान् प्रकृति के जनक स्रोत हैं। साथ ही परब्रह्म अपने धाम में अलग से उपस्थित रहते हैं।

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ।

योगेर्ल वा तदात्मानं वेदेहाया निवर्तते ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

विरमेत—दूर रखता है; यदा—जब; चित्तम्—मन; हित्वा—त्याग कर; वृत्ति-त्रयम्—जागृती, स्वप्न तथा सुषुप्ती ये तीन अवस्थाएँ, जोकि भौतिक जीवन के कार्य हैं; स्वयम्—स्वतः; योगेन—नियमित आध्यात्मिक अभ्यास से; वा—अथवा; तदा—तब; आत्मानम्—परमात्मा को; वेद—जानो; ईहायाः—भौतिक प्रयास से; निवर्तते—बन्द कर देता है।

मनुष्य का मन या तो अपने आप से या नियमित आध्यात्मिक अभ्यास से जाग्रत, सुप्त तथा सुषुप्त अवस्थाओं में भौतिक स्तर पर कार्य करना बन्द कर देता है। तब वह परमात्मा को समझ पाता है और भौतिक प्रयास करना बन्द कर देता है।

तात्पर्य : जैसाकि श्रीमद्भागवत (३.२५.३३) में कहा गया है—*जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा*—भक्ति जीव के सूक्ष्म शरीर को किसी पृथक् प्रयास के बिना ही विलीन कर देती है, जिस तरह उदर में अग्नि हमारे खाये हुए पदार्थों को पचा देती है। सूक्ष्म भौतिक शरीर यौन, लोभ, मिथ्या अहंकार तथा उन्माद के द्वारा प्रकृति का शोषण करने पर तुला रहता है। किन्तु भगवान् की प्रेमाभक्ति कट्टर मिथ्या अहंकार को विलीन कर देती है और मनुष्य को शुद्ध आनन्दमय चेतना, कृष्णभावनामृत, तक पहुँचा देती है।

एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ।

मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; लक्षण-लक्ष्याणि—लक्षणों से लक्षित; पुराणानि—पुराण; पुरा-विदः—प्राचीन इतिहासों में दक्ष; मुनयः—मुनिगण; अष्टादश—अठारह; प्राहुः—कहते हैं; क्षुल्लकानि—छोटे, गौण; महान्ति—महान्; च—भी।



प्राचीन इतिहास में दक्ष मुनियों ने घोषित किया है कि अपने विविध लक्षणों के अनुसार, पुराणों को अठारह प्रधान पुराणों और अठारह गौण पुराणों में विभाजित किया जा सकता है।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडं ।

नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥ २३ ॥

भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ।

वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

ब्राह्मम्—ब्रह्मा पुराण; पाद्मम्—पद्म पुराण; वैष्णवम्—विष्णु पुराण; च—तथा; शैवम्—शिव पुराण; लैङ्गम्—लिंग पुराण; स-गारुडम्—गरुड़ पुराण के साथ; नारदीयम्—नारद पुराण; भागवतम्—भागवत पुराण; आग्नेयम्—अग्नि पुराण; स्कान्द—स्कन्द पुराण; संज्ञितम्—नामक; भविष्यम्—भविष्य पुराण; ब्रह्म-वैवर्तम्—ब्रह्मवैवर्त पुराण; मार्कण्डेयम्—मार्कण्डेय पुराण; स-वामनम्—वामन पुराण सहित; वाराहम्—वराह पुराण; मात्स्यम्—मत्स्य पुराण; कौर्मम्—कूर्म पुराण; च—तथा; ब्रह्माण्ड-आख्यम्—ब्रह्माण्ड पुराण नामक; इति—इस प्रकार; त्रि-षट्—छः के तीन गुने अर्थात् अठारह।

अठारह प्रधान पुराणों के नाम हैं—ब्रह्मा, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वराह, मत्स्य, कूर्म तथा ब्रह्माण्ड पुराण।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने उपर्युक्त दोनों श्लोकों की पुष्टि में वराह पुराण, शिव पुराण तथा मत्स्य पुराण से उद्धरण दिये हैं।

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ।

शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥ २५ ॥

#### शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; इदम्—यह; समाख्यातम्—पूरी तरह वर्णित; शाखा-प्रणयनम्—शाखाओं का विस्तार; मुनेः—मुनि ( श्रील व्यासदेव ) के; शिष्य—शिष्यों के; शिष्य-प्रशिष्याणाम्—तथा उनके शिष्यों के भी शिष्यों के; ब्रह्म-तेजः—आध्यात्मिक शक्ति; विवर्धनम्—बढ़ाने वाले।

हे ब्राह्मण, मैंने तुमसे वेदों की शाखाओं के महामुनि व्यासदेव, उनके शिष्यों तथा शिष्यों के भी शिष्यों द्वारा किये गये विस्तार का भलीभाँति वर्णन किया है। जो इस कथा को सुनता है उसकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ जाती है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत “पौराणिक साहित्य” नामक सातवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।